ISSN 2320-2858 UGC Journal No. 42684 नवम्बर 2022

वर्ष - 10 अंक - 120

ब्रज लोक संपदा

सौजन्य : गीता शोध संस्थान एवं रासलीला अकादमी, वृन्दावन

(कुंभनदास जब तिलक लगाते थे उस समय इस पत्थर के कटोरे में जल भरकर अपने तिलक को देखते थे। इस कटोरे को आरसी (दर्पण) कहते हैं)

~O bmH gnXm

साहित्य, कला, संस्कृति, मानविकी एवं समाज विज्ञान की अन्तर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका

संपादक :

डॉ. उमेश चन्द्र शर्मा

★

सह-संपादक :

चन्द्र प्रताप सिंह सिकरवार

★

सहयोग :

डॉ. रश्मि वर्मा

★

टंकण एवं कला संयोजन :

दीपक शर्मा

ब्रज ग्राफिक्स

कार्यालय :

ब्रज लोक संपदा कार्यालय, 302, गुरुकुल रोड, वृन्दावन

मो. : 09410619265, 7017709490

Website : www.brajloksampada.com ★ E-mail : brajloksampada@gmail.com

स्वामी मुद्रक एवं प्रकाशक

डॉ. उमेश चन्द्र शर्मा द्वारा चौधरी प्रिंटिंग प्रेस, ब्रह्मकुण्ड, वृन्दावन, मथुरा से मुद्रित कराकर 302, गुरुकुल मार्ग, वृन्दावन (मथुरा) से प्रकाशित।

ब्रज लोक संपदा भारतीय संस्कृति के मासिक शोध-पत्र की पृष्ठभूमि में हमारा यह सद् प्रयास है कि भारत की क्षेत्रीय कला व साहित्य का प्रज्ञात कलेवर परिवेषण कर राष्ट्रीय भावात्मक एकता के सूत्र को परस्पर संस्कृति के आदान-प्रदान से पुष्ट करें; इसी से व्यक्ति का व्यक्तिवाद शिथिल होकर समन्वित भाव से लोक अस्मिता के रूप में विकासोन्मुख नव जीवन का स्वरूप ग्रहण करेगा।

आवेदन - पत्र

कृपया मैं व्रजलोक संपदा पत्रिका का तीन वर्ष अथवा आजीवन सदस्य बनना चाहता/चाहती हूँ। सदस्यता शुल्क.....नकद/चैक/ड्राफ्ट नं.....दिनांक .....

.....संलग्न है।

श्री/श्रीमती/.....

पिता/पति का नाम.....

जहाँ पत्रिका मंगाना चाहते हो वहाँ का पूरा पता .....

.....

पिन..... दूरभाष/मो०.....

हस्ताक्षर

(कृपया उक्त आवेदन पत्र को हाथ से लिखकर या टाईप कराकर भेज सकते हैं)

सदस्यता शुल्क

एक प्रति- 100/-, एकवर्षीय - 1100/-

विशेष: अपना चैक/ड्राफ्ट: श्रीश्री नरहरि सेवा संस्थान के नाम से

302, गुरूकुल रोड, वृन्दावन, मथुरा, उ.प्र., पिन: 281121 पर भेजें।

बैंक का नाम - केनरा बैंक

शाखा - विद्यापीठ चौराहा, वृन्दावन

खाता संख्या - 2480101002061

आईएफसी कोड - CNRBN0002480

प्रकाशित आलेखों के विचारों से संपादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

शोध पत्रिका से सम्बन्धित सभी विवाद केवल मथुरा न्यायालय के अधीन होंगे।

सम्पादकीय

डॉ. उमेश चन्द्र शर्मा

श्री विट्ठलनाथ जी ने श्रीनाथ जी की आठों झाँकियों में उनकी लीला-भावना के अनुसार समय और ऋतु के रागों के द्वारा कीर्तन करने की व्यवस्था की थी। उसके लिए उन्होंने चार अपने पिता जी के और चार अपने भक्त-गायक शिष्यों की एक मंडली संगठित की थी। उस मंडली के आठों महानुभाव श्रीनाथ जी के परम भक्त होने के साथ ही साथ अपने समय में पुष्टि सम्प्रदाय के सर्वश्रेष्ठ संगीतज्ञ, गायक और कवि भी थे। उनके चयन करने से श्री गो. विट्ठलनाथ जी ने उन पर मानों अपने आशीर्वाद की मौखिक 'छाप' लगायी थी, जिससे वे 'अष्टछाप' के नाम से प्रसिद्ध हुए। पुष्टि सम्प्रदाय की भावना के अनुसार वे श्रीनाथजी के आठ अंतरंग सखा हैं, जो उनकी समस्त लीलाओं में सदैव उनके साथ रहते हैं; अतः उन्हें 'अष्टसखा' भी कहा गया है।

उ.प्र. ब्रज तीर्थ विकास परिषद मथुरा द्वारा विगत दिनों अष्टछाप के कवियों के स्थलों का अन्वेषण कर उनके स्थलों का पुनरुद्धार एवं सौंदर्यीकरण हेतु एक योजना को साकार रूप देने का संकल्प लिया। जिसके अंतर्गत हमने गोवर्धन के आसपास के परिक्षेत्र में विद्यमान अष्ट सखाओं की भजन कुटी एवं समाधि स्थलों को अपने अनुसंधान का लक्ष्य बनाया। जिसे हम यहां यथावत प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहे हैं।

अन्तर्वस्तु

1.	श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद : विषादयोग	07
2.	अष्टछाप कवियों की स्थलीय आख्या – *डॉ. उमेश चंद्र शर्मा*	08
3.	बिहार के कण-कण में श्रीराधे-कृष्ण – *प्रो. डॉ. आर.एन. सिंह*	18
4.	अष्टछाप कवियों का आराधन – *डॉ. उमेश चंद्र शर्मा*	21
5.	श्रीकृष्ण (लोक संदर्भ) – *डॉ. उमेश चंद्र शर्मा*	26
6.	भारतीय संस्कृति में राधा-भाव – *पद्मश्री मोहन स्वरूप भाटिया*	30
7.	सन्ध्या का अर्थ एवं व्याख्या – *डॉ. सत्यदेव सिंह*	32

श्रीमद्भगवद्गीता

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः॥

(श्रीमद्भगवद् गीता अध्याय 1-17)

कायारूपी काशी। पुरुष जब सब ओर से मनसहित इन्द्रियों को समेटकर काया में ही केन्द्रित करता है, तो 'परमेष्वासः'- परम ईश में वास का अधिकारी हो जाता है। परम ईश में वास दिलाने में सक्षम काया ही काशी है। काया में ही परम ईश का निवास है। 'परमेष्वास' का अर्थ श्रेष्ठ धनुषवाला नहीं बल्कि परम+ईश+वास है।

अष्टछाप के कवियों की स्थलीय आख्या

डॉ. उमेश चंद्र शर्मा

ई. स. 1502 में वल्लभाचार्य जी जब द्वितीय बार ब्रज में पधारे तब उन्होंने गिरिराज पर्वत पर एक मंदिर का शिलान्यास किया था, जिसमें वे श्रीनाथ जी का श्रीविग्रह स्थापित करना चाहते थे। उसी समय कुम्भन दास जी व अन्य कई ब्रजवासी आपके शिष्य बने थे। आपके शिष्यों की संख्या एक लाख चौरासी थी; जिनमें 84 शिष्य प्रमुख थे। "चौरासी वैष्णवन की वार्ता" नाम से ग्रंथ भी है।

अष्ट छाप के प्रथम चार कवि कुम्भन दास, सूरदास, परमानंद दास, कृष्णदास वल्लभाचार्य जी के शिष्य थे। आचार्य जी के उपलब्ध प्रमुख 30 ग्रंथ हैं जो संस्कृत भाषा में हैं। आपने 52 वर्ष की अवस्था में काशी के हनुमान घाट पर जल समाधि ली थीं यह घटना ई. सं. 1530 की है।

वल्लभाचार्य जी के दो पुत्र थे जिसमें बड़े पुत्र गोपीनाथ जी का आकस्मिक निधन हो गया था तत्पश्चात् द्वितीय पुत्र विट्ठलनाथ जी गद्दी पर विराजमान हुए। आपने ही अष्टछाप की स्थापना की थी। आपने ही पुष्टि मार्गीय सेवा भावना का क्रियात्मक रूप से विस्तार किया और इसके लिए ठाकुर जी की आठ-झाँकियों का सुन्दर क्रम प्रारंभ कर दिया तथा प्रत्येक झाँकी के लिए आठ कीर्तनकार नियुक्त किये जिनमें प्रथम चार पिता के शिष्य थे कुम्भनदास, सूरदास, परमानंद दास, कृष्ण दास तथा अन्य चार गोविन्द स्वामी, छीत स्वामी, चतुर्भुज दास, और नंददास आपके ही शिष्य थे। ई. स. 1545 में अष्टछाप की स्थापना हुई थी। ये आठों कवि काव्य और संगीत कला में निपुण थे। संप्रदाय में इनको ठाकुर जी के अष्ट सखा और राधाजी की अष्ट सखियों के रूप मान्यता है।

उक्त आठों कवियों की साधना स्थलियों पर जाकर उन स्थलों का अवलोकन करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ; उन स्थलों का विवरण क्रम से प्रस्तुत निम्नवत् किया जा रहा है-

सूरदास जी (सन् 1478-1583)- अष्टछाप के कवियों ने भगवान् श्रीकृष्ण की ललित लीलाओं के कीर्तन विषयक अनेक प्रकार के पदों की रचना कर भक्ति साहित्य को ही अग्रसर नहीं किया, प्रत्युत ब्रजभाषा को भी सुन्दर साहित्यिक रूप दिया। इनमें सबसे श्रेष्ठ कवि सूरदास जी को सभी ने स्वीकार किया है। सूरदास जी का जन्म आगरा-मथुरा मार्ग पर स्थित रुनकता नामक गांव में 1535 विक्रमी की वैशाख सुदी पंचमी को हुआ था। श्रीवल्लभाचार्यजी इनके पदों के लालित्य से इतना प्रभावित हुए कि इन्हें श्रीनाथ जी के कीर्तन हेतु अपने साथ ले आये। सं. 1580 में आपको दीक्षा दी।

सूरदास जी द्वारा रचित सूरसागर को ब्रज साहित्य का सिरमौर कहा जाता है। आज आलोचना की सर्वथा नूतन पद्धति से भी इसकी आभा उसी प्रकार दैदिप्यमान है। इस ग्रंथ रत्न में भगवान श्रीकृष्ण के बाल रूप, प्रेम

चंद्र सरोवर पारासौली स्थित सूर कुटी

तथा विरह का वर्णन इतना सांगोपांग तथा ललित भाव से किया गया है कि आपके समकक्ष दूसरा अन्य कोई कवि कहीं भी प्रतीत नहीं होता।

आपकी साधना स्थली चंद्रसरोवर एक सुरम्य स्थल है। बालकृष्ण कौशिक मुखिया जी से ज्ञात हुआ कि यहाँ सूरदास जी ने 73 साल साधना की। इसी से लगा हुआ गांव पारासौली है। यहां पर रहकर उन्होंने एक लाख पदों की रचना की थी। ऐसा सुना जाता है कि आचार्य वल्लभ के बताये हुए मार्ग पर ये आजीवन सुबोधनी भागवत के दशम स्कंद की विविध लीला आख्यानों पर पद बनाते और ठाकुरजी को सुनाते थे।

परमानंद दास जी (सन् 1493–1584)– आप जनपद फर्रुखाबाद के अन्तर्गत कन्नौज के रहने वाले थे। अविवाहित जीवन यापन किया। ये कीर्तनकार के साथ उत्कृष्ट काव्य रचनाकार भी थे। आपकी कीर्तन प्रस्तुति इतनी आकर्षक थी कि कोई भी उस भाव के प्रभाव में आकर रमने लगता था। वल्लभाचार्य जी इनसे इतने प्रभावित थे कि इनके साथ इनके जन्म गृह गांव भी गये वहाँ इन्होंने तत्काल पद रचना गाते-गाते ही की थी जिसे

परमानंद दास जी का समाधि स्थल

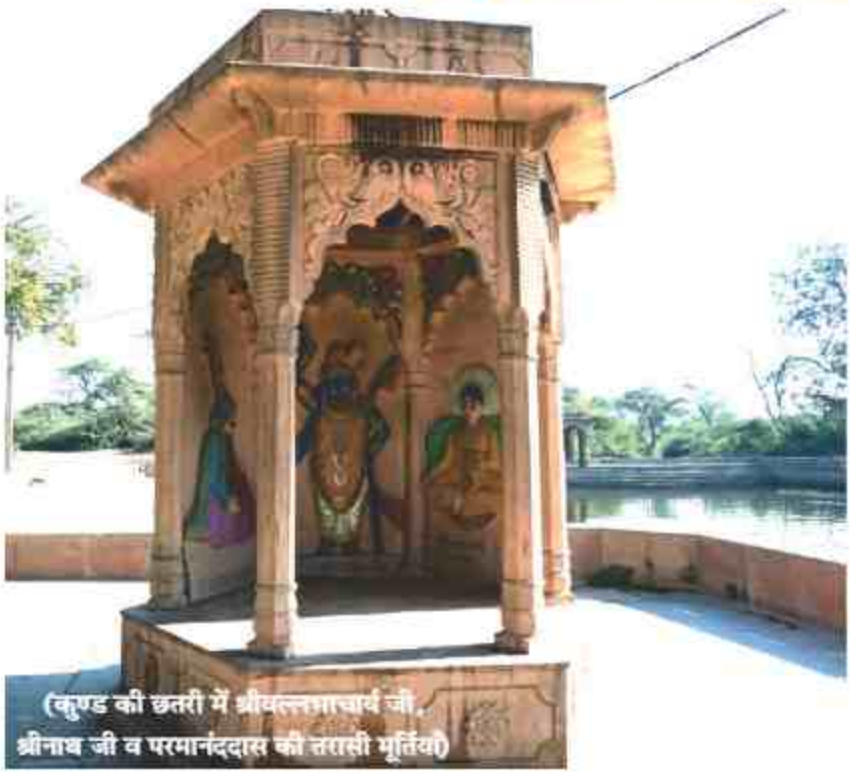

(कुण्ड की छतरी में श्रीवल्लभाचार्य जी, श्रीनाथ जी व परमानंददास की तरासी मूर्तियां)

सुनकर आचार्यजी तीन दिन तक ध्यान मग्न रहे। पद यह है– हरि तेरी लीला की सुधि आवै। कमल नैन मन मोहिनी मूरत मन मन चित्र बनावै।

अष्टछाप में सूरदास और परमानंद दास ये दो ही सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं, क्योंकि इन दोनों ने ही कृष्ण की समूची लीलाओं का गान किया है। गोस्वामीजी ने दोनों की ही रचनाओं को सागर कहा था। आगे चलकर दोनों ने ही सूर सागर सूरदास ने और परमानंद सागर परमानंद दास ने लिखे जो हिन्दी साहित्य जगत में मुकुट मणि माने जाते हैं।

ये दोनों ही सागर हिन्दी साहित्य के लिये अत्यन्त उपयोगी ग्रंथ माने जाते हैं। आपने अपने निवास स्थल सुरभी कुंड पर शरीर त्याग कर लीला धाम में प्रवेश किया। उस समय आपकी आयु 91 वर्ष की थी। पुष्टि सम्प्रदाय में परमानंद दास जी को दिन की गौचारण लीला में ठाकुरजी के तोक सखा और रात्रि की कुंज लीला में स्वामिनी जी की चंद्रभामा सखी के रूप में स्वीकार किया गया है।

समाधि स्थल अत्यन्त उपेक्षित पड़ा हुआ है जहां गंदगी भी पूरे तरीके से फैली हुई है। सुरभि कुंड के चारों कोनों पर 4 बुर्जियाँ बनी हुई हैं। उन बुर्जियों में वल्लभाचार्य जी, श्रीनाथ जी और परमानंद दास जी की छवियाँ पत्थर पर उकेरी गयी हैं किन्तु समाधि स्थल लोहे की जाली से किसी प्रकार से जोड़ा गया है तथा कुंड बहुत ही सुंदरता से बना हुआ होने पर भी अत्यन्त गंदगी के कारण वह एकदम श्रीहीन सा प्रतीत होता है। कुंड का पानी भी स्वच्छ नहीं है।

कुंभनदास जी (सन् 1468–1583)– कुंभनदास जी का जन्म श्रीगोवर्धन के समीप जमुनावता गांव के एक क्षत्री किसान परिवार में हुआ था। जनश्रुति के अनुसार उस समय इस गांव में यमुनाजी का प्रवाह था। आप खेती कर अपने परिवार का पालन पोषण करते थे। एक बार अकबर बादशाह के बुलावे पर आपको फतहपुर सीकरी जाना पड़ा था। बादशाह ने इनका विशेष सम्मान किया, बादशाह ने इनके पद सुने और पदों पर मुग्ध हो गये। अति प्रसन्न होकर इनसे कुछ मांगने के लिये कहा तो इन्होंने कहा कि अब मुझे कभी मत बुलावें। मुझे यहाँ आने में बड़ा कष्ट हुआ है, इसी भाव का पद उसी समय रचकर सुनाया–

पत्थर में उकेरे वल्लभाचार्य जी एवं कुंभनदास जी के मूर्ति चित्र

भक्तन कहा सीकरी सों काम
आवत जात पन्हैया टूटी, बिसरि गयो हरिनाम।

आपका निधन सूरदास के बाद तथा परमानंद से पहले हुआ बताया जाताहै। अन्तिम पद यह है–

रसिकनी रस में रहत गढ़ी।

(कुंभनदास जी का कुंआ एवं कुंभन तलाई)

(कुंभनदास जी की साधना स्थली)

(कुंभनदास जी का निवास स्थल तथा वर्तमान सेवायत राजेन्द्र दास)

(कुंभनदास जब तिलक लगाते थे उस समय इस पत्थर के कटोरे में जल भरकर अपने तिलक को देखते थे। इस कटोरे को आरसी (दर्पण) कहते हैं)

जमुनावता में कुंभनदास जी के घर और मंदिर है। जिसमें कुंभनदास जी के साथ वल्लभाचार्यजी व कुंभनदास जी दोनों समीपस्थ दर्शाये गये हैं। लगभग 400 वर्गगज में मंदिर और घर बना हुआ है। जिसमें कुंभनदास जी के समय का वट का वृक्ष है। उनके द्वारा निर्मित एक गौशाला भी है। इसके अतिरिक्त उनके घर से कुछ ही दूरी पर कुंभन तलैया व कुंभन कुंआ के भी भग्नावशेष देखने को मिलते हैं। कुंभन तलैया मिट्टी की बनी हुई है। उसके एक तरफ तीन बुर्ज घाटों पर निर्मित हैं। यहां पर तलैया का सौंदर्यीकरण आवश्यक सा प्रतीत होता है।

कुंभनदास जी के अंतिम समय का अग्नि संस्कार आन्यौर में हुआ था। जिसके लिए वहां पर लगभग 150 वर्गगज भूमि पर चाहर दिवारी हो रही है। दोनों तरफ जाने-आने का मार्ग है। उसकी पूर्व दिशा में एक चबूतरा 15X15 का बना हुआ है। जिसमें एक हैंडपंप भी लगा है किन्तु इसमें कहीं भी ऐसा कोई शिलालेख अथवा बोर्ड नहीं मिला जिससे हम कह सकते हैं कि यही कुंभनदास जी का समाधि स्थल है। केवल मौखिक चर्चाओं के आधार पर हम यह कह पा रहे हैं।

कृष्णदास (सन् 1496-1579)- आप वल्लभाचार्य जी के शिष्य थे। आपका जन्म गुजरात के चिलोतरा गांव में कुनबी के घर हुआ था। ये जाति के शूद्र थे। परंतु आचार्य जी के बड़े कृपा पात्र थे। मंदिर के प्रधान मुखिया हो गये। आपने राधा-कृष्ण के प्रेम परक शृंगार के बड़े सुन्दर पद गाये हैं जुगल मान चरित्र नामक ग्रथ लघु आकार में मिलता है, दो और भी ग्रंथ बतलाये जाते हैं।

श्रीवल्लभाचार्य जी ने सं. 1566 की अक्षय तृतीया अर्थात् वैशाख शुक्ल तृतीया के दिन श्रीनाथजी को नवीन मंदिर में प्रवेश कराया था। उससे कुछ समय पूर्व ही कृष्ण दास 13 वर्ष की अवस्था में आचार्यजी की शरण में आये थे।

आपने पूंछरी राजस्थान में एक कुंआ निर्माण कराया था। वहीं आप अपनी गाय भी रखते थे, जहाँ लढ़ामनी के भी अवशेष दिखाई देते हैं। कुंआ भी झाँड़ियों के मध्य है। इसी कुंआ में फिसल कर गिर गये तभी आपका प्राणान्त हुआ।

बिछुआ कुण्ड का सौंदर्यी-करण होने के लिए वहां के निवासियों ने पुनः पुनः प्रस्तावित किया है।

बिछुआ कुण्ड पर कृष्णदास जी की साधना स्थली

कृष्णदास जी द्वारा निर्मित गौओं की लढ़ामनी के अवशेष

कृष्णदास जी द्वारा निर्मित कुआ के अवशेष

(मानसी गंगा के निकट नंददास की साधना स्थली यहीं उन्होंने लीलाप्रवेश किया था)

नंददास (सन् 1533– 1583)– सूरदास और परमानंद दास के पश्चात् इनकी विमल प्रसिद्धि सर्वत्र जानी जाती है। आप सूकर क्षेत्र से यहाँ गोकुल में पधारे। जनश्रुति के अनुसार ये तुलसीदास जी के चचेरे भाई थे, किन्तु इसका कोई प्रमाण अभी तक प्राप्त नहीं है। आपके साहित्य की एक उक्ति विशेष रूप से विद्वानों में प्रचलित है कि– नंददास जड़िया और सब गढ़िया अर्थात् नंददास शब्दों को जड़ते थे इस कला में उनके समान कोई नहीं माना गया अन्य सभी कवि गढ़िया माने शब्दों को गढ़ने वाले थे। यद्यपि इस उक्ति के कहने वाले का परिचय अभी तक प्राप्त नहीं है किन्तु इस उक्ति की समालोचना हिन्दी साहित्य में इसके औचित्य और सार्थकता की भूरि–भूरि प्रशंसा सभी आचार्यों ने की है। आप विट्ठल नाथ जी के शिष्य थे।

नंददास मात्र कवि ही नहीं थे। शास्त्र के भी मर्मज्ञ विद्वान थे। संस्कृत भाषा के अच्छे विद्वान थे अत: आपने भागवत के दशम स्कन्ध का ब्रजभाषा में अनुवाद किया है। इनकी सर्वोत्तम रचनायें रास पंचाध्यायी व भ्रमर गीत हैं। आप उच्च प्रतिभावान थे। अकबर से भेंट इनकी भी हुई थी।

नंददास की यह साधना स्थली मानसी गंगा के पश्चिमी तट पर है। यह तिवारी के रूप में बनी हुई है।

छीतस्वामी (सन् 1515-1585)- आप मथुरा के माथुर चतुर्वेद ब्राह्मण परिवार में जन्में व बड़े हुये थे। सुसम्पन्न पंडा थे। आपके बारे में बताया जाता है कि राजा बीरवल इनके यजमान थे। आपका स्वभाव उग्र बताया जाता है। गोस्वामी विट्ठल नाथ जी से दीक्षा के पश्चात् शांत भक्त हो गये। आपने फुटकर पद रचनायें की हैं। इनके पदों में शृंगार के अतिरिक्त ब्रज के प्रति प्रेम भाव भी विशेष पाया जाता है-

छीत स्वामी जी की बैठक

हे विधना! तो सों अचरा पसार मांगौ।
जनम जनम दीजो याही व्रज बसिवौ।

राजस्थान के गांव पूछरी में अंतर्गत अप्सरा कुण्ड स्थित है यहां पर एक दाऊजी का मंदिर भी है। कुण्ड के पूर्वी दिशा में छीत स्वामी निवास करते थे। यहीं उनका शरीर भी शांत हुआ। यहीं से वह कीर्तन करने के लिए श्रीनाथ जी के मंदिर जाया करते थे।

अप्सरा कुण्ड

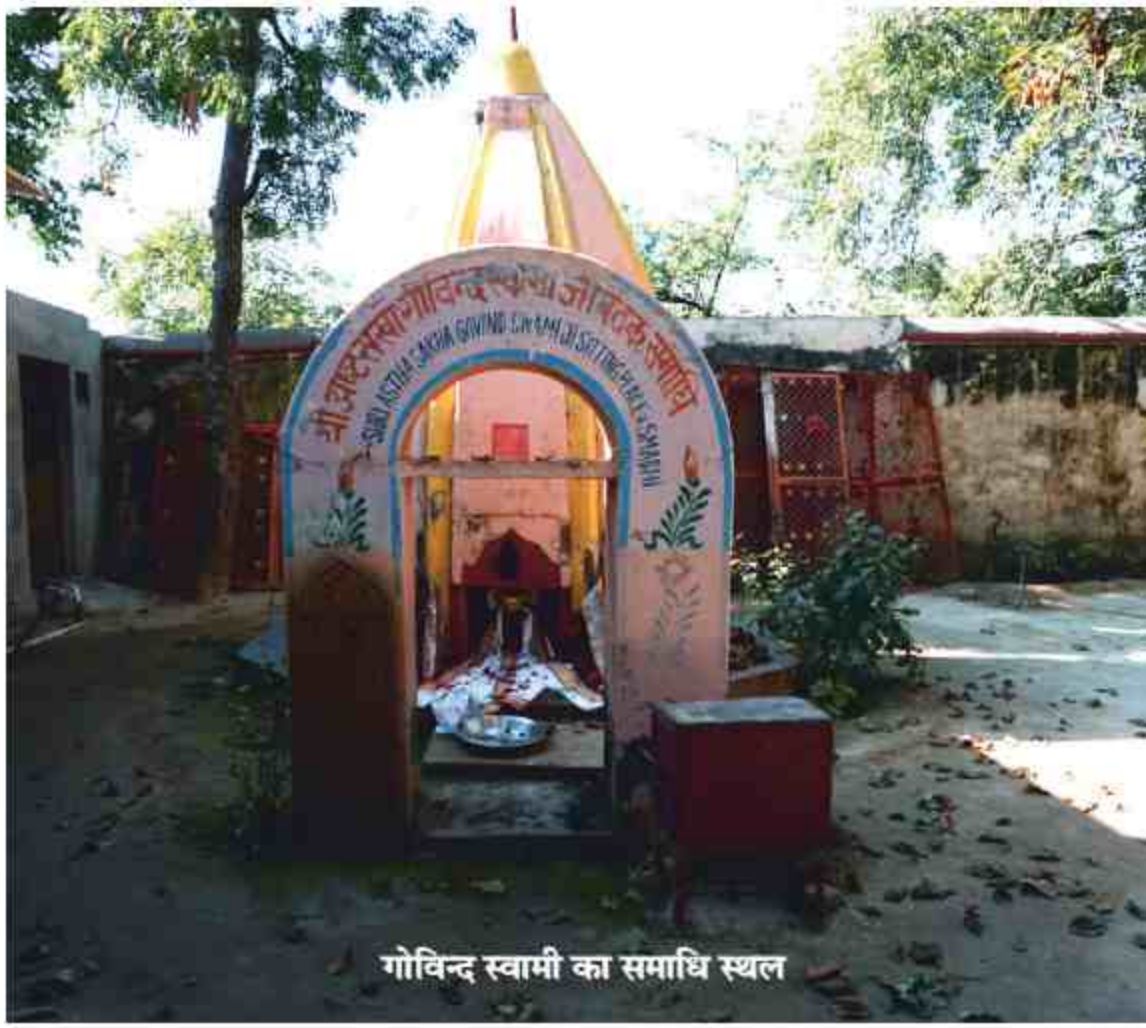

गोविन्द स्वामी का समाधि स्थल

गोविन्द स्वामी जी (सन् 1505–1585)– आप राजस्थान के भरतपुर जनपद के अंतरी गांव के रहने वाले थे। आपका जन्म ई. सं. 1505 में सनाढ्य ब्राह्मण कुल में हुआ था। आप विरक्त भाव से महावन में रहते थे। संप्रदाय कल्पद्रुम के अनुसार 1536 ई. में गोस्वामी विट्ठलनाथजी की शरण में आये। इस समय आपकी काव्य रचना व गायन दोनों ही समाज में प्रतिष्ठित हो चुकी थी। आपका रचना काल 1543 से 1568 माना गया है। आपने गोवर्धन पर्वत की तलहटी में ऐरावत कुण्ड से सटी हुई भूमि कदंब खंडी बनाई थी। तभी से इस स्थल को गोविन्द स्वामी की कदंब खण्डी के नाम से जाना जाता है। आप बड़े पक्के गवैया थे। जनश्रुति के अनुसार तानसेन भी कभी–कभी आपका गायन सुनने के लिये आया करता था। आपने जीवन पर्यन्त जमुना जी में पैर तक नहीं धोये जलपान करते थे। दण्डवत करते, किन्तु कभी स्नान नहीं किया, इनका भाव यह था कि यमुना हमारी माता है अर्थात् स्वामिनी जी हैं। ई. सं. 1586 में विट्ठलनाथ जी की मृत्यु के पश्चात् कुछ समय बाद ही आपका भी निधन हो गया था। 1586 ही इनका समय माना जाता है। इनका प्रसिद्ध पद–

प्रात समै उठि जसुमति जननी,
गिरिधर सुत को उबटिन्हवावति।
करि सिंगार बसन भूषन सजि
फूलन, रचि रचि पाग बनावति।।

गोविन्द स्वामी उच्च कोटि के भक्त होने के साथ-साथ कवि और संगीतज्ञ भी थे। आपने लगभग 600 पदों की रचनाऐं की है। जिसमें बाल लीला, प्रेम लीला एवं ब्रज के उत्सवों और त्यौहारों से सम्बन्धित कथानकों से प्रेरित होकर पद लिखे हैं। प्रारंभ से ही आप ऐरावत कुंड पर निवास करते थे। जहां से दोनों समय प्रात: काल एवं सायंकाल श्रीनाथजी की कीर्तन सेवा करते रहे।

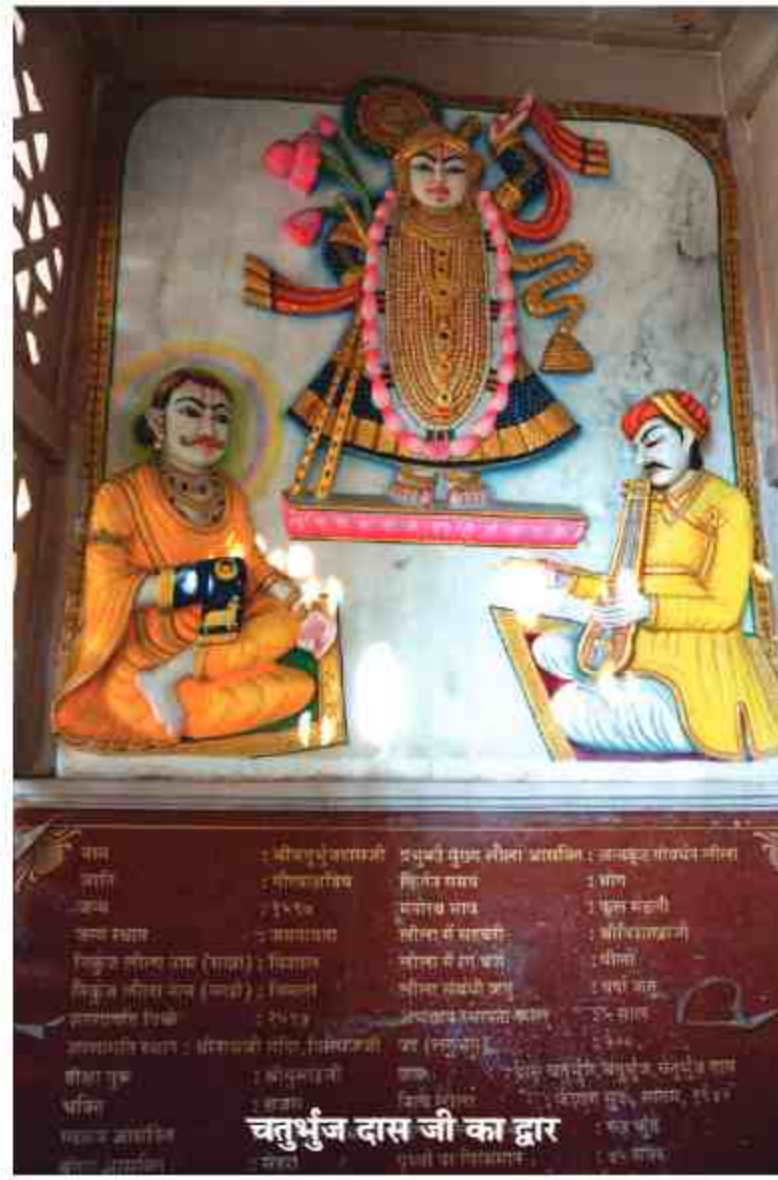
चतुर्भुज दास जी का द्वार

चतुर्भुज दास जी (सन् 1530-1585)- आपका जन्म 1530 ई. में जमनावता में हुआ था। अष्टछाप के सुप्रसिद्ध कविवर कुम्भनदास जी के सबसे छोटे पुत्र थे। पिता का पूर्ण प्रभाव पुत्र पर हुआ। आप केवल श्रीनाथजी के ही समक्ष गाया करते थे। और किसी के सामने कभी नहीं गया। एक बार रासलीला के समय गोकुलनाथ जी ने रासलीला में गाने के लिये कहा आपने यह कह कर अस्वीकार कर दिया कि यहाँ श्रीनाथजी का पदार्पण हुआ ही नहीं। अत: भाव राज्य में श्रीनाथ जी का आगमन हुआ और आपने गायन किया-

अद्भुत नट भेस धरे जमना तट श्याम सुन्दर
गुन निधान गिरिवर धर रासरंग राचे।

जनश्रुति के अनुसार विट्ठलनाथ जी के देहावसान के पश्चात् श्रीनाथजी के दर्शन करने के अनन्तर रुद्रकुण्ड पर स्तुति गान करते करते 1585 में लीलाधाम में प्रवेश कर गये।

★★★

बिहार के कण-कण में श्रीराधे-कृष्ण

प्रो. डॉ. आर.एन. सिंह, फरीदाबाद, (बक्सर, बिहार)

अखिल ब्रह्माण्ड के नायक, समस्त चराचर के पालनहार, श्री हरि विष्णु के अवतार भगवान श्रीकृष्ण बिहार के कण कण में तथा प्रत्येक मन में रसे बसे हैं। भगवान श्रीकृष्ण का बिहार के प्रत्येक भाषा, क्षेत्र एवं प्राणी मात्र से अभिन्न तथा अटूट सम्बन्ध है। बिहार में बोली जाने वाली भाषाओं में– भोजपुरी, मैथिली, मगही, अंगिका, बज्जिका इत्यादि प्रमुख हैं। विविधताओं से भरे बिहार में सभी भाषाओं के लोक–गीतों, लोक गाथाओं एवं लोक संस्कृति में भगवान श्रीराधे–कृष्ण के बाल रूप, बाल लीला, रासलीला सहित गीता के उपदेशों आदि के जीवन्त उदहारण उपलब्ध हैं। चैत्र मास से लेकर फाल्गुन तक मनाए जाने वाले सभी पर्व–त्योहारों, अनुष्ठानों, संस्कारों में रीति गीत, संस्कार गीत, पर्व गीत के रूप में कन्हैया, कान्हा, गोपाल, कृष्ण, माखनचोर, चितचोर, गिरधर के नाम के साथ सोहर, फगुआ, चैता, कजरी, विरहा जीवंत रूप में गाए जाते हैं।

बिहार के प्रमुख त्योहारों में होली, छठ पूजा, रामनवमी, बुद्ध जयंती, महावीर जयंती, तीज, कृष्ण जन्माष्टमी, जितिया इत्यादि हर्षोल्लास से मनाये जाते हैं। कृष्ण जन्माष्टमी भाद्र मास की कृष्ण पक्ष की अष्टमी को मनाया जाता है। इसी दिन भगवान श्री कृष्ण का जन्म रात के 12 बजे उनके मामा कंस के कारागार में हुआ था। कृष्ण जन्माष्टमी के दिन लोग व्रत रखते हैं और आधी रात 12 बजे के बाद कृष्ण आरती करते हैं और अपना व्रत तोड़ते हैं। यह त्यौहार बिहार में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारत सहित विश्व के अनेक देशों में आस्था एवं उल्लास के साथ मनाया जाता है। बिहार में श्री कृष्ण जन्माष्मी के पावन अवसर पर मेले का भव्य आयोजन किया जाता है, झाँकियाँ निकाली जाती हैं, मन्दिरों की रौनक बढ़ जाती है।

बिहार की लोकगीत संस्कृति में संस्कार गीत, ऋतुगीत, पर्वगीत, जाति सम्बन्धी गीत, पेशागीत, बालक्रीड़ा गीत, भजन या श्रुति गीत, गाथा गीत, तथा विशिष्ट गीत आदि प्रमुख हैं। इन सभी लोकगीत संस्कृतियों में भगवान राधे कृष्ण का विशेष स्थान है। संस्कार गीतों का सम्बन्ध लौकिक अनुष्ठानों से है। ये गीत सभी जातियों–जनजातियों में मनुष्य के जन्म से लेकर मरण तक सभी प्रमुख अवसरों पर गाये जाते हैं। जन्म, मुंडन, विवाह, गौना जैसे अवसरों पर गाये जाने वाले गीत उल्लास और हर्ष से भरे होते हैं। कुछ बहुप्रचलित सोहर गीत सुनकर ऐसा लगता है कि हम बिहार में नहीं बल्कि मथुरा अथवा गोकुल धाम में आ गए हों।

सोहर : देवकी के भाग (भाग्य) उजियार भइले, ब्रम्हा जी सहाय भइले हो।
ललना मथुरा में जनमे कन्हईया, कि बड़ा निक लागेला हो॥
धन धन धन हो जसोदा माई (माता), धन नन्द बाबाजी हो।
धन भईले गोकुल नगरिया, कि बड़ा निक लागेला हो॥

गोकुला में बाजेला बजनवा, आँगन गोपी नाचेली हो ॥
हो ललना सब देवे गाइके बधाईया, कि बड़ा निक लागेला हो ॥
नन्द जी के हरषित बा मनवा, बभनवा बोलावेले हो ।
ललना आई गईले बंशी के बजवईया, कि बड़ा निक लागेला हो ॥
सकल चराचर नायक, सब सुख दायक हो ।
ललना मुस्काए बलदाऊ भईया, कि बड़ा निक लागेला हो ॥

जनमे हैं किशन कन्हईया, गोकुल में बाजे बधाईया नु हो ।
देवकी के जनमे कन्हईया, गोकुल में बाजे बधाईया नु हो ॥
अंगना में बाजेला बधाईया, जनमले कन्हईआ नु हो ।
ललना घरे घरे बाजेला बधाव, महलिया उठे सोहर हो ॥
केहु लुटावे अन धन सोनवा, त केहु धेनुगाईया नु हो ।

एक फूल फुलेला अवधपुर, दूसर फूल गोकुल हो ।
सखी तीसर फूलवा फुलेला अँगनवा, चउथ फुलवा आँचर हो ।

ऋतुगीत : फगुआ, चैता, कजरी, हिंडोला, चतुर्मासा और बारहमासा आदि गीत इस गीत परंपरा में गाए जाते हैं। फाग या होली बसंत ऋतु का गीत है। यह मुख्यतया समूह में गाया जाता है। बिहार में 'होरी' या 'जोगीड़ा' गाने की प्रथा है। होरी गाने में प्राय: पुरुषों की भागीदारी रहती है। चैत्र मास में गाये जाने वाला 'चैता' बिहार की विशिष्ट पहचान है। इसका गायन एकल एवं सामूहिक दोनों रूपों में होता है। चैता गायन का चलन मुख्यत: बिहार के माघी एवं भोजपुरी भाषी क्षेत्र में पुरुषों में पाया जाता है।

होली :
कूद पड़े जमुना में कन्हईया, लड़िका हो गोपाल ।
जमुना कूदि कालिया नाग नाथे, लड़िका हो गोपाल ॥
वृज में हरि होरि मचाई, वृज में हरि होरि मचाई ।
इत से निकसे नवल राधिका, उत से कुँवर कन्हाई ॥

कान्हा करे बलजोरी ए मईया, कान्हा करे बलजोरी ।
जब हम जाईला पनिया भरन के पनिया भरन के हो, पनिया भर के ॥
देलन मटुकिया फोरि -----

चईता :
आई गईले चइत महिनवा ए रामा, कान्हा नाही अईले ।
गोपियन के संगवा में, कान्हा बृन्दाबनवा में ।

मधुर मुरलिया बजावेले कन्हईया।
जमुना के तीरे तीरे, राधा जाली धीरे धीरे
मधुर मुरलिया बजावेले कन्हईया

कजरी : हरे रामा दागा कियो बनवारी, कहे ब्रजनारी हे हरि।
हरे रामा कृष्ण बने मनिहारी, पहिन लिए सारी ए हरि।
उधो दे दिह संदेशा निरदईया से, सावरों कन्हईया से ना।

सखी सावन के बरसे फुहार हो, राधा झूले झुलनवा।
हरि जनम लिहलें जेल के कोठारिया में, कि भादो के अंधारियाँ ना।

इसी प्रकार पर्व गीतों, पेशा गीतों, बालक्रीड़ा गीतों, भजन या श्रुति गीतों, गाथा गीतों तथा विशिष्ट गीतों में भगवान राधे कृष्ण के विभिन्न स्वरूपों का वर्णन देखने व सुनने में आता है।

जरासंध का अखाड़ा बिहार के राजगृह में अवस्थित है। जरासंध भगवान श्री कृष्ण के मामा कंस के ससुर थे। उनके दोनों पुत्रियों अस्ति और प्राप्ति का विवाह कंस से हुआ था। जरासंध बहुत बलवान थे। भगवान श्री कृष्ण के इशारे पर भीम ने जरासंध का वध किया था। भगवान श्री कृष्ण स्वयं बिहार के राजगृह में आए थे। जरासंध के पुत्र सहदेव को अभयदान देकर उन्होंने मगध का राजा बना दिया था।

जरासंध महाभारत कालीन मगध राज्य के नरेश थे। सम्राट जरासंध ने बहुत से राजाओं को अपने कारागार में बंदी बनाकर रखा था पर उसने किसी को भी मारा नहीं था। इसका कारण यह था कि वह चक्रवर्ती सम्राट बनने की लालसा हेतु ही वह इन राजाओं को बंदी बनाकर रख रहा था ताकि जिस दिन 101 राजा हों और वे महादेव को प्रसन्न करने के लिए उनकी बलि दे सके।

श्रीकृष्ण से कंस के वध का प्रतिशोध लेने के लिए उन्होंने 17 बार मथुरा पर चढ़ाई की लेकिन जिसके कारण भगवान श्रीकृष्ण को मथुरा छोड़ कर जाना पड़ा फिर वो द्वारिका जा बसे, तभी उनका नाम रणछोड़ कहलाया।

बिहार के लोगों का भगवान श्री राधे कृष्ण के प्रति श्रद्धा, भक्ति व समर्पण का हीं परिचायक है पटना का श्रीराधा बांके बिहारी इस्कॉन मंदिर। इस मंदिर को बनाने में लगभग 100 करोड़ की लागत आयी है। निर्माण कार्य में लगभग 10 वर्ष लगे हैं। श्रीराधा बांकेबिहारी मंदिर, पटना (इस्कॉन मंदिर) बिहार सहित अन्य राज्यों एवं विदेशी पर्यटकों का आस्था का केन्द्र बन रहा है।

★★★

अष्टछाप कवियों का आराधन

डॉ. उमेश चंद्र शर्मा

श्रीराधा के प्रति विट्ठलनाथ जी की परानुरक्ति की मनोहारिणी अभिव्यक्ति का परिचय उनके स्वामिनी सम्बन्धी स्तोत्रों से प्राप्त होता है। अष्टछाप कवियों के साहित्य में जिस माधुर्य भाव का अपार विस्तार दृष्टिगत होता है। उसका मौलिक आधार इन स्तोत्रों को ही कहा जा सकता है।

सूरदास : श्रीकृष्ण चकई जेरी हाथ में लिए हुए, मोर मुकुट आकर कुण्डलादि से मंडित हुए और अंग पर चन्दन के लेप से विशेष शोभित होते हुए यमुना तट पर आ निकलते हैं। वहाँ एकदम उनकी दृष्टि राधा पर पड़ जाती है, राधा के विशाल नेत्र, मस्तक पर रोली के तिलक नील वसन की फरिया और पीठ पर डोलती बेनी और उसकी गौर छवि को कृष्ण देखते ही रीझ जाते हैं। नयन से नयन मिलने ही मन पर मोहिनी छा जाती है। सूरदास ने इस सरस चित्रण देखने योग्य है–

प्रथम सनेह दुहिनि मन जान्यौ
नैन नैन कीन्ही सब बात, गुप्त प्रीति प्रगटान्यौ।

इन शब्दों द्वारा उनकी प्रीति की गुप्त रहस्यमयता का संकेत मिलता है। श्रीकृष्ण राधा को उसके और अपने प्रेम की वास्तविकता से परिचय कराते हैं–

नेह पुरातन जानि स्याम कौ, अति आनन्द भईं

उनके पारस्परिक प्रेम क्रीड़ा की उसी रहस्य ममता का उल्लेख देखें–

सुनि वृषभान सुता मेरी बानी, प्रीत पुरातन राखहु गोई।
सूर स्याम नागरहि सुनावत, मैं तुम एक, नांहि हैं दोई॥

इस रस आनन्द भूमि का पल्लवन दृष्टव्य है–

कह फूली आवति री राधा।
मानहुं मिलि अंक भरि माधौ, प्रगटत प्रेम अगाधा।

परमानन्द दास : श्रीराधा के मुख सौन्दर्य की कल्पना में विभोर हो उठते हैं, भाव राशि का मोहक रूप प्रस्तुत है।

अमृत निचोई कियो इक ठौर।
तेरौ वदन सँवारि सुधा निधि, तादिन विधना रचीन औ।

सुनि राधे का उपमा दीजै, स्याम मनोहर भये चकोर।
सादर पीयत मुदित तो हि देखत, तपत काम उर नन्द किशोर॥
कौन कौन अंग करौं निरुपन, गुन और सींव रुप की रासि।
परमानन्द स्वामी मन बांध्यौ, लोचन वचन प्रेम की फांस॥

परमानन्द दास काव्यांश से अभिप्राय यह है कि राधा रस सार सर्वस्वा हैं। रसिक स्वरुप श्रीकृष्ण के आस्वाद्य रस की मंजुल मूर्ति ही राधा रूप में अवतरित हुई हैं।

ब्रज गोपिकाओं के साथ लीला–पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण जल–बिहार करते हैं, परम पावन जमुना के शीतल जल में जल क्रीड़ा प्रारम्भ होती है। परमानन्द दास सखी भाव भावित होकर सखी रूप में प्रिया–प्रियतम के जल विहार का आनन्द लेते हैं।

लाल कौं छिरकत हैं ब्रजबाल।
जमुना जल उछलत चहुं दिसतें हँसत हँसावत ग्वाल॥
बाँह जोटी फिरत परस्पर पीत कमल मनिमाल।
परमानन्द प्रभु तुम जीऔ नन्द गोप के लाल॥

कुम्भन दास : राधाकृष्ण के एकात्म भावना का चित्रण करते हुए कुम्भनदास ने आस्वादक रस और आस्वाद्य रस की अयुत सिद्धता को प्रगट करते हुए कहा है कि–

रसिकनी रस में रहत गड़ी।
कनक बेलि वृषभानु नन्दिनी स्याम तमाल चढ़ी।
विहरत लाल संग राधा के कौने भांति गढ़ी।
कुम्भनदास लाल गिरिधर संग रति रस केलि पड़ी

श्रीकृष्ण और राधा के रूप सुषमा के प्रति उनकी आसक्ति अद्‌भुत थी। एक दिन कार्यवश दर्शनों से वंचित रह गये। इसलिये उनकी असह्य वेदना उनके शरीर में व्याप्त हो गई। उनके चित्त से तरूण किशोर रसिक नन्दनन्दन की लीला माधुरी उतरती नहीं थी।अल्प समय के विरह वियोग में ही कराह उठे और उनकी वाणी से यह पद निसृत हुआ–

केते दिन जु गये बिनु देखें।
तरुन किसोर रसिक नन्दनन्दन, कछुक उठति मुख रेखैं॥
वह सोभा वह कांति वदन की, कोटिक चंद विसेखैं।
वह चितवन वह हास मनोहर, वह नटवर वपु मेखैं।
स्याम सुन्दर संग मिलि खेलन की, आवत हिये अपेखैं।
कुम्भन दास लाल गिरिधर बिनु, जीवन जनम अलेखैं॥

कृष्णदास : कृष्ण दास ने भी रसयिता और रसनीयता के अभिन्न स्वरूपता का उत्प्रेक्षा के माध्यम से सुन्दर चित्रण किया है- राधा श्रीकृष्ण के रूप सौन्दर्य में अनवरत ही डूबी रहती हैं। वह जल भरने के बहाने सेबार-बार यमुना पुलिन पर श्रीकृष्ण के दर्शन करने जाती हैं। लौकिक लाज तो वह कभी की भूल गई। वे तो मात्र श्रीकृष्ण के ही प्रेमरस का पान करना चाहती है-

ग्वालिन कृष्ण दास सौं अटकी।
बार बार पनघट पर आवत सिर जमुना जल मटकी।
मदन मोहन की रूप सुधा निधि पीवत प्रेम रस गटकी।
कृष्ण दास धन्य धन्य राधिका लोकलाज सब पटकी।

राधाकृष्ण का प्रेम रूप लिप्सा प्रधान है। अष्टछाप के कवियों ने रूप लिप्सा और सौन्दर्य के योग से प्रेम का उदय दिखाया है। कृष्णदास के प्रेम के उदय में रूप लिप्सा और सौन्दर्य का योग है।

देखो भाई मानौ कसौरी कसी।
कनक बेलि वृषभानु नंदिनी गिरिधर उर जुवसी॥
मानों स्याम तमाल कलेवर सुन्दर अंग मालती घुसी।
चंचलता तजि के सौदामिनी जल घर अंग बसी॥
तेरौ वदन सुठाए सुधानिधि विधि कौने भांति गसी।
कृष्णदास सुमेरु सिंधुते सुरसरि धरनि धंसी॥

गोविन्द स्वामी : राधा के नयनों से भी कभी ओझल नहीं होते यदि उन्हें अलग करने का प्रयास भी किया जाये तो वह निष्फल ही रहता है। राधा श्रीकृष्ण से पूछती हैं कि किस प्रकार दर्शन देकर हमारे कष्ट का निवारण करेंगे। गोविन्द स्वामी के शब्दों में यह पद लक्षित है-

मोहन नैनन तैं न टरत।
बिनु देखें तलाबेली सीलागत, देखत मन जो हरत॥
असन बसन सुधि आवै, अब मन कछु न करत।
गोबिन्द बलि इमि कहत पियारी, सिख दे री कैसैकं आवै भरत॥

गोविन्द स्वामी ने श्रीराधा से कृपा दृष्टि की प्रार्थना की है, साथ ही श्रीकृष्ण के द्वारा प्रेम में नेम नहीं होने के रहस्य से भी पर्दा उठा दिया है-

कृपा अवलोकनि दान रै री महादान, वृषभानु दुलारी।
तृषित लोचन चकोर मेरे तुव वदन इन्दु किरनि पान दै री॥
सब विधि सुन्दर सुजान सुन्दरी सुनि लै विनति कान दै री।
गोविन्द प्रभु पिय चरण परसि कह्यौ, जाचक कौ तुम दान दै री॥

छीतस्वामी– श्रीकृष्ण क्षण मात्र के लिए भी अपनी प्रियतमा से अलग नहीं रहते। वह स्वयं उनकी रूप माधुरी का पान करके अपने सौभाग्य की सराहना किया करते हैं। वे पूर्ण रूप से वृषभानु नन्दनी के वश में रहते हैं। इसी आशय से परिपूर्ण छीत स्वामी का यह पद दृष्टव्य है–

राधिका श्याम सुन्दर कौं प्यारी।
नख सिख अंग अनूप विराजत, कोटि चंद दुतिवारी।
एक छिन संग न छोड़त मोहन, निरखि निरखि बल हारी।
छीत स्वामी गिरिधर वस जाके, सो वृषभानु दुलारी।

उज्जवल नील मणि में कहा गया है कि माधुर्यभाव की भक्ति शृंगार रस का आध्यात्मिक रूप है। शृंगार रस ब्रह्म पक्ष के साथ जब सुशोभित होता है तो वह माधुर्य भाव कहलाता है। वस्तत: सौन्दर्य यौवन में ही अधिक निखार ग्रहण करता है।

नन्ददास– नन्ददास ने श्रीराधाकृष्ण जन्म शीर्षक पद के थोड़े शब्दों में ही श्रीराधा के तात्विक रूप का संकेत कर दिया है, राधा रस स्वरूप श्रीकृष्ण की रसनीय रूप में परिणति है। इस तत्व को ही व्यक्त करने के लिये "सुख कौ सुख सागर प्रगटी है बरसानै, निरवधि–नेह अवधि अति प्रगटी मूरत सब सुख दाई"।

नन्द दास ने होली और बसन्त पर बहुत पदों की रचना की है। होली उत्सव के पश्चात् डोलोत्सव का भी वर्णन अपने पदों में किया है। वसन्त ऋतु में डोल में विराजमान प्रिया–प्रियतम के अंग–प्रत्यंग की सुषमा अपरिमित हैं नन्ददास के अनुभव भरत भाव प्रवणता की धारा –

ब्रज की नारी डोल झुलावै।
सुख निरखत मन में सचु पावैं मधुर मधुर कल गावै॥
रतन खचित सिंघासन शोभित, मनोंकाम की डोरी।
बैठे श्यामाश्याम झूलत हैं, नीलकमल प्रिय राधा गोरी॥
सूरत मूरत दोऊ रसीली उपमा नही सम तोल।
नन्ददास प्रभु कौं निरखत दम्पति झूलत डोल।

चतुर्भुजदास : रासेश्वरी श्रीराधा सर्वाधिक अनन्यता रूपी परम फल की प्राप्ति का उत्कृष्टतम आदर्श हैं। राधा के मान वर्णन द्वारा जीवन के अहं भाव से सर्वथा मुक्त होकर रस स्वरूप श्रीकृष्ण से सर्वथा तादात्म्य प्रापत करने के रहस्य को प्रतीकात्मक रूप से प्रस्तुत किया गया है, मान, रस में रिस को लाता है और रस को कुरस बना देता है, रसीली राधा को रिस छोड़कर रस स्वरूप श्रीकृष्ण से मिलने के लिये, चित्रित करते हुए चतुर्भुज दास का यह कथन काव्यात्मक रूप में दृष्टव्य है–

रस ही में बस कीन्हे कुंवर कन्हाई।
रसिक गोपाल रसिक रस रिझवाते

रस ही में तासों रिस तजिरी माई॥

पिया कौ प्रेम रिए सों ने होइ रसीली राधे

रस ही में वचन सुख दाई।

चतुर्भुज प्रभु गिरिधर रस भये तासौं

कुरस कत मिलि रहै हिरदें लपटाई।

वस्तुत: राधा माधव दो नहीं है। प्रकृति पुरुष में द्विधा विभक्त एक ही तत्व राधा और माधव है। जिस प्रकार से तरु और छाया का परस्पर तादात्म्य है उसी प्रकार–

दोई न कंचन भूषण कबहूँ जल तरंग ज्यौं दो ही नहीं

त्यों ही जानि सूर मन वाचक राधा माधौं दोइ नहीं

एतदर्थ राधा का आराधन ही कृष्ण का आराधन है और श्रीकृष्ण का आराधन ही राधा का आराधन होता है। यही इस युगल दम्पति का रहस्य है।

★★★

श्रीकृष्ण
लोक संदर्भ

डॉ. उमेश चंद्र शर्मा

देववाणी संस्कृत के मनीषी अध्येताओं ने अपनी भावधारा में निमज्जित श्रीकृष्ण की आराधना से पूरित आलेख जो कि अन्वेषण के अनुशासनों से संश्रित है; सद्यस्क जिज्ञासुओं के लिये सर्वथा उपादेय हैं।

भारतीय भाषाओं में श्रीकृष्ण का अनुशीलन एक वृहद योजना का प्रस्तावित स्वरूप है; वस्तुत: साहित्य समस्त कलुषित भावों को मिटाने में पूर्ण सक्षम होता है, जितनी भी मानसिक दुर्बलतायें हैं, जो कि भविष्य की व्याधि का रूप धारण कर लेती हैं; वे सभी शनै: शनै: धूमिल हो जाती हैं, आचार्य मानस ने साहित्य को महा-औषधि के रूप में स्वीकार किया है अर्थात् मन में स्थित भाव ही हमारे कार्य-कलापों में अभिव्यक्त होते हैं। हमारे अन्दर संप्रीति का भाव तभी उदित होगा, जब हम सत्-साहित्य का अध्ययन अनवरत करते रहेंगे।

भारतीय मनीषा जिस चैतन्य बोध का अनुसन्धान निरन्तर करती चली आ रही है, भले ही उसके नाम और रूप नव परिवेश में निर्मित होते रहे हों। द्वापर की बाल लीलाओं में ग्वाल-बालों के साथ लीला वैविध्यता भक्तों के सुकोमल भावों में सदैव विद्यमान रहती है।

उन लीला स्थलियों से इतना गहरा तादात्म्य है कि लोक मानस ने उन्हें उत्सवों के रूप में ग्रहण कर लिया, यही नहीं उन्हीं का निरन्तर ध्यान करना तथा उन मधुरतम लीलाओं की उपासना में अहोरात्र साधनारत रहना अपना परम सौभाग्य माना। इस प्रकार यह कथन अति रंजित न होगा कि लोक मानस की कोख से भक्ति काव्य ही नहीं; भक्ति आन्दोलन भी आविर्भूत हुआ।

समूचे भारतवर्ष में इसी भाव संकुल ने कितने ही लोक गीतों, कहानियों, नाट्य रूपकों, नृत्यों, संगीत की राग-रागिनियों को प्रादुर्भूत्त किया, जिसका परिगणन निश्चित रूप से अन्वेषकों का विषय है। देश की आंचलिक अवनियों की क्रोड में पल्लवति लोक संस्कृति का रंग-रंगीला आंचल हमारे अलोच्य साहित्य का शृंगार है। श्रीकृष्ण विश्व की प्राय सभी भाषा-भाषियों में किसी न किसी रूप में अनुस्यूत हैं, कृष्ण लीलाऐं मानव मात्र की प्रेरणा पुंज हैं, साथ ही ये लीलायें, इतने रहस्यात्मक तथ्यों से आवृत्त हैं, कि इनकी जितनी पर्तों को हटाने का प्रयास किया जाये उतनी ही परतें सघन होती चली जाती हैं, यही नहीं जीवन के प्रतिपल पथ प्रदर्शक के रूप में प्रहरी की भांति एक आलोक पुंज लेकर सबकी आसन्न परिस्थिति का मार्ग प्रशस्त करती हैं। बंगाल में यह उक्ति प्रसिद्ध है कि-

धान बिना खेती नाईं, कानू छाड़ा गीत नाईं

इस प्रकार जन समुदाय बाल्यावस्था से ही उनका अनुयायी हो जाता है, अतएव श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व संशय रहित है क्योंकि उनका प्रत्येक कार्य जन-हित में है। इसलिये वे कंस के बुलावे पर उसकी सभी कुटिलताओं पर विजय प्राप्त करते हुए स्वयं ने कंस का संहार किया और उग्रसेन को राजा बनाते है। जब वे अनुभव करते हैं कि जरासन्ध की सेना ब्रजवासियों का विनाश कर देगी तो अपनी दुर्बल-सैन्य शक्ति को देख मथुरा वासियों की रक्षा के लिये उस समय वे रण छोड़ कर अकेले ही नहीं गये साथ में यदुवंशियों के यूथ के यूथ ब्रज से गये थे, जो समूचे भारतवर्ष के सीमान्त प्रान्तों में जाकर बस गये और उन्होंने ब्रज की इस लोक संस्कृति को अक्षुण्य बनाये रखा। कालान्तर में यहाँ की मूल भूत लोक संस्कृति ने भारत की राष्ट्रीय एकता में अहं भूमिका का निर्वहन किया कौरव-पाण्डव युद्ध की राजनीति में तो तत्कालीन राजनीति के नियामक बन जाते हैं, अपने ही वंश में अनाचार की वृद्धि होने पर पृथ्वी का भार हल्का करने में भी संकोच नहीं करते। श्रीकृष्ण का यही मानवीय रूप जन मानस पर आच्छादित हो गया तभी जन-जन ने उन्हें ध्यान का केन्द्र बिन्दु स्वीकार किया। इसी कारण श्रीकृष्ण किसी युग विशेष के नहीं युग-युग के युग पुरुष बन गये।

अखण्ड भारत की धरती पर अनेक विशाल मंदिरों की स्थापना हुई वे सभी स्थल हमारी प्रायोजना के अभिप्रेत हैं। अद्यतन उसके स्मृति-सूत्र वातावरण को प्रभावित किये हुये हैं और कतिपय परिवर्तनों के साथ मूल भाव को संजोये हुये हैं। काल विपाक से अनेक अन्तर्द्वन्दों के मध्य पृथक देशों की निर्मिति हुई। किन्तु अन्धकार से प्रकाश, असत्य से सत्य और मृत्यु से अमरत्व के स्रोत की ओर यात्रा करने की वृत्ति जीवन की उदात्त कल्पना और संस्कृति की धारा का प्रबल वेग आज भी मानव के आत्म ओज में यथावत विद्यमान है।

द्वारका जब समुद्र में विलय होने लगी तो यादवों की टोली बना बना कर वहाँ से सुदूर अंचलों की ओर पलायन करने लगे यह लगभग बाइस दलों में विभाजित होकर एक कठोर अनुशासित संगठन बनाकर चलते रहे, दस दलों का समूह कश्मीर अफगानिस्तान से होता हुआ रशिया जिसे कुछ विद्वान ऋषिय देश भी कहते हैं, वहाँ पहुँच गये। अन्य बारह दलों ने घूमते हुए इरान, इराक, सीरिया, जोर्डन, पुलस्तिन, ईजिप्त तक पहुँचे। इस प्रकार यदुकुल के वे नरश्रेष्ठ विविध प्रान्तरों में बिखर गये।

कंबोडिया के अंकोरवाट जिसे कभी यशोधर पुर कहा जाता था, वहाँ बारहवीं शताब्दी की 1125 ई. में सम्राट सूर्यवर्मन द्वितीय ने श्रीकृष्ण का एक विशाल मंदिर बनवाया, एक अन्य उल्लेख के अनुसार प्रथम महायुद्ध में भारतीय सेना की टुकड़ियाँ ईजिप्त के अनेक नगरों में नियुक्त थी उन्होंने वहाँ श्रीकृष्ण का मंदिर देखा तो वे आश्चर्यचकित रहे गये। वहाँ ही वे ठहर गये और पूजा पाठ करने लगे। इसी प्रकार पाकिस्तान, अफगानिस्तान, बंगला देश, श्रीलंका, दक्षिण अफ्रीका, जावा, सुमात्रा, वाली आदि के साथ अन्य देशों में भी श्रीकृष्ण का लोक भावन स्वरूप वहाँ की संस्कृति में संसृष्टि है। इस प्रकार भागवत धर्म की स्थापना करने वाले कृष्ण भारतीय संस्कृति के ही नहीं अपितु लोक संस्कृति के भी प्राण हैं।

यही सनातन संस्कृति है, इसकी व्याप्ति भारतीय जनमानस का आहार है, उसी की अभिव्यक्ति हमें ललित कला, लोक कला व उपयोगी कलाओं में परिलक्षित होती रही है। अत: यह कहना समीचीन होगा कि यह संस्कृति लोक मानस की रागमयी चेतना की परिस्कृति का पर्याय है।

पाणिनि लोक जीवन के गम्भीर अध्येता थे, यही कारण है कि वे भाषा के चिन्तन को इतने व्यापक और गम्भीरता में ले जा सके कि महाभाष्यकार पंतजलि ने भी पुनः पुनः लोकतःप्रमाणम् लोक विज्ञान च सिद्धम् जैसे सूत्र दिये। वस्तुतः भाषा किताबों में नहीं निवास करती वह तो लोक जीवन में अपना आवास बनाये हुए है, जीवन की धारा अविरल प्रवाहित रहती है उसी प्रकार भाषा भी प्रवहमान रहती है अर्थात् भाषा, संस्कृति और जीवन अविछिन्न हैं, इनका चिन्तन अलग-अलग नहीं हो सकता। संस्कृत से प्राकृत और अपभ्रंश का क्या औचित्य था। विभिन्न जनपदीय बोली, लोक भाषाएँ, हिन्दी आदि का विकास लोक जीवन में कैसे होता? भारत के भाषा चिन्तन के अन्तर्गत वे सभी प्रादेशिक भाषायें भी तो सम्मलित हैं।

लोक संस्कृति की शिक्षा प्रणाली में श्रद्धा-भक्ति की प्राथमिकता रहती है। उसमें अविश्वास तर्क का कोई स्थान नहीं रहता। इसी से ज्ञान और सिद्धि की सहज प्राप्ति होती है।

श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः

यह सिद्धान्त लोक संस्कृति के उन्नायक श्रीकृष्ण के मुख से उच्चरित हुआ है, लोक संस्कृति की श्रद्धा भावना की परम्परा शाश्वत है। श्रद्धा शब्द श्रत् से निर्मित हुआ है, श्रत् का अर्थ सत्य है। जहाँ यह भाव हो कि यह सत्य है, वहीं श्रद्धा विराजती है। जब हमारा चिन्तन सघनता की सीमा में प्रवेश करने लगता है, तो हमारे मानस-पटल पर स्वतः स्फूर्त होने लगेगा कि विश्व की समूची संस्कृतियों का उद्गम स्थल एक ही है। स्थल, काल और वातावरण की वैविध्यता से वह विविधता धारण किये हुये रहता है। जिस प्रकार वायु एक ही है किन्तु स्थान और वातावरण व काल क्रम से सुगन्ध और दुर्गन्ध युक्त हो जाती है। इसका मूल भूत रूप एक ही है यही लोक संस्कृति है। यही भारतीय संस्कृति को निरन्तर पुष्ट करती है क्योंकि इसमें जीवटता के साथ प्राणद स्पर्श और समन्वय के अशेष स्रोत है। यही यथार्थ और आदर्श का संदर्श भरा संबोधि संगीत है।

जब तक कोई कला-साधक उन चैतस-कृतियों से स्वयं स्पंदित नहीं होता तब तक वह यथानुरूप अभिव्यक्ति करने में अपने आप को अवश पायेगा। अभिप्रायः यह है कि जो ज्ञान लोक हित में नहीं वह निश्चित रूप से अनौचित्य पूर्ण है, जहाँ कहीं किसी क्षेत्र में भी लोक को सर्वोपरि सच्ची प्रतिष्ठा मिलती है, वहीं से जीवन की स्वस्थ्य वेल का प्रथम अंकुर प्रस्फुटित होता है। इसके साथ ही वेदव्यास जी ने महाभारत में एक स्थल पर लिखा है-

प्रत्यक्ष दर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः

अर्थात् प्रत्यक्ष दर्शन ही समग्र दर्शन है। यह सूत्र अत्यन्त व्यापक है। भारतीय लोक सुविस्तृत है। जैमिनीय उपनिषद् का यह वाक्य इसी कथन की पुष्टि करता हुआ गोचर होता है-

बहु व्याहितो वा वयं बहुशो लोकः।

क एतद् अस्य पुनरीहतो अयात्॥

अर्थात् यह लोक अनेक प्रकार से विस्तरित है, प्रत्येक वस्तु में प्रभूत है।

जिस देश का लोक साहित्य जितना अधिक समृद्ध, अधिक व्यापक, अधिक स्वाभाविक होगा, उसकी संस्कृति उतनी ही समृद्ध, प्रशान्त और स्थायी होगी। समूचे जगत में लोक की समीचीन अलंकृति परम उपादेय

और मांगलिक है, लोक जीवन का समाज के स्तर पर समीकरण ही संस्कृति है। भारत में इस संस्कृति की मूल भूमि अध्यात्म है। निरपेक्ष अध्यात्म साहित्य उपनिषद ने स्पष्ट घोषणा की है कि यह आत्म तत्व अन्तरतर है तथा साकार अथवा निराकार रूप में स्वभावगत है, इसी संदर्भ में लोक भाषा में भक्त के उद्‌गार इस प्रकार प्रस्फुटित है–

आकृति प्रकृति तेरी, चिन्तन चितेर गई,
टारत टरै ना टारे, सोचन अचल छावै।
तेरौ ही अनेरौ चेरौ, भली भांति जानत हौ,
जौ लौ घट प्रान तौ लौ, नाम गांव तेरौ आवै।
अंतर निकट सेवा, हिय में अंजोरिदीनी,
विनती हमारी यहू, ब्रजराज दीस जावै।
ऐसौ वैसौ जैसौ हूँ मैं, अनेसौ सब भांति सौं,
द्वार तेरे परौ रहूँ, यही आस मोय भावै।

इन रसयमी पंक्तियों में कितनी आध्यात्मिकता है, कितनी दिव्यता और अलौकिकता है, इसमें निहित तत्व यह है कि लोक जीवन ने संतो से आध्यात्मिक प्रकाश निरन्तर प्राप्त किया है। उन्होंने लोक भाषा में हृदय के उद्‌गार संचित कर जन मानस का आध्यात्मिक मार्ग प्रशस्त किया है। एतदर्थ मुझे यहाँ यह कहना है कि धार्मिक संस्कृति के सरलतम साधनों का व्यापक उपभोग उन लोगों से सम्बन्ध स्थापित करने के लिये किया जाये जिन्हें हमने अपने से दूर समझ रखा है, सभी संस्कृति प्रेमियों का दायित्व है कि वे उसे दीनतम् एवं विशेषकर अज्ञात व्यक्तियों तक पहुँचाये।

★★★

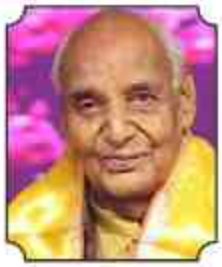

भारतीय संस्कृति में राधा-भाव

पद्मश्री मोहन स्वरूप भाटिया

श्रीराधा के सम्बन्ध में अनेक धारणाएँ हैं, अनेक मान्यताएँ हैं, अनेक भावनाएँ हैं। इनमें परस्पर भिन्नताएँ भी हैं किन्तु वे सब राधा के प्रति अटूट श्रद्धा और भक्ति-भावनाओं के समक्ष गौण हैं।

श्रीराधा का नाम भागवत पुराण में नहीं है, वेद में नहीं हैं, भगवान् कृष्ण, विष्णु, ब्रह्मा, शिव या अन्य देवी-देवताओं के समान पुरातात्त्विक सम्पदा में उनकी प्रतिमाएँ नहीं मिली हैं किन्तु राधा भारतीय संस्कृति के कण-कण में, कोटि-कोटि मानव मन में समाई हुई हैं। कुछ विचारक राधा के वर्चस्व को तो क्या अस्तित्व को ही नहीं मानते हैं, यदि ऐसा मान लिया जाय कि राधा केवल कल्पना हैं तो वह ऐसी माधुर्यमयी कल्पना है, एक ऐसी कल्पना हैं, जो निराकार नहीं साकार बन चुकी हैं, हमारे हृदय के अन्तरतम में मूर्तिमान हैं, हमारी आराध्या हैं, वन्दनीय हैं।

श्रीराधा के सम्बन्ध में यह एक विलक्षण बात ही है कि विश्व भर में ऐसा कोई अन्य उदाहरण नहीं है जब कि किसी धर्म या सम्प्रदाय के अनुयायियों ने किसी ऐसे व्यक्तित्व को अपना आराध्य बनाया हो जिसका भौतिक रूप में जनम ही न हुआ हो।

श्री राधा का जन्म हुआ हो या न हुआ हो किन्तु भावुक भक्तों ने श्रीकृष्ण के अभिन्न रूप में राधा की इतनी लीलाएँ जोड़ ली हैं कि अब यदि उन्हें हटा दिया जाय तो कृष्ण लीलाएँ रसहीन होकर रह जायेंगी और आज श्रीकृष्ण का जो लोकरंजक रूप है, प्रेम और माधुर्य का जो रूप है, वह धूमिल होकर रह जायेगा।

वेद, पुराण, इतिहास और पुरातात्त्विक सामग्री से भगवान् श्रीकृष्ण के अस्तित्व पर कोई प्रश्न चिन्ह नहीं है। श्रीकृष्ण स्वयं जब श्री राधा की आराधना करते हैं, जब श्री राधा उनकी आहलादिनी शक्ति हैं तब तो श्री राधा का स्थान श्रीकृष्ण से भी ऊपर है। भारतीय संस्कृति में, साहित्य में, धर्म में और जन जीवन में श्री राधा का इतना महत्त्वपूर्ण स्थान है कि बिना श्री राधा के श्रीकृष्ण के माधुर्य और भक्ति की वह कल्पना पूर्ण नहीं होती है जो 'युगल स्वरूप' की सरस भावभूमि में विद्यमान है। यही कारण है कि श्रीकृष्ण तथा श्री राधा में इतना तादात्म्य है कि परस्पर एक दूसरे के दर्शन होते हैं।

श्री राधा और कृष्ण अभिन्न हैं। ऋग्वेद के एक उपनिषद् राधिकोपनिषद् में कहा गया है कि श्रीकृष्ण की गोपी रूपी अनेकानेक शक्तियाँ हैं। उनमें अन्तरंगभूता और श्रेष्ठ आह्लादिनी शक्ति श्री राधा हैं और वे स्वयं भी श्रीकृष्ण की आराधना करती हैं। राधा और कृष्ण वस्तुतः एक ही रूप हैं किन्तु लीला करने के लिए ही उन्होंने दो रूप धारण किए हैं। एक ही हैं और श्रीकृष्ण अपने माधुर्य रस का रसास्वादन करने के लिए ही श्री राधा के रूप

में अवतरित हुए हैं। श्री राधा और कृष्ण दो देह एक प्राण हैं। अग्नि और दाहिका शक्ति, सूर्य और उसकी प्रकाश किरण तथा चन्द्रमा और उसकी चन्द्रिका के समान ही राधा और कृष्ण को पृथक् नहीं किया जा सकता है।

धार्मिक आचार्यों ने, साहित्यकारों ने, कवियों ने श्री राधा का भगवान् श्रीकृष्ण की अनन्य प्रियतमा, रास-रासेश्वरी अथवा देवी स्वरूप में चित्रण किया है किन्तु श्री राधा के भक्तजन और लोकगीतकार एक ब्रज-गोपिका, सखी लाडिली पुत्री, भोली किन्तु चंचल स्वभाव वाली ब्रजबाला के रूप में राधा के दर्शन करते हैं।

कौन गाँम के कुँमर कन्हैया, कौन गाँम
राधा गोरी - नन्दगाँम के कुँमर कन्हैया,
बरसाने की राधा गोरी।

और सावन में-

झूला पै झूलैं ए जी रानी राधिका जी, ए जी कोई गावत गीत मल्हार।

रस-रंग भरी होली में-

रंग बरसे रे गुलाल बरसै, राधेरानी हमारी पै रंग बरसे।

और विवाह के समय गाई जाने वाली गालियों में राधेरानी के प्रताप का वर्णन एक लोकगीत की इस पंक्ति में-

तेरी अजब अटपटी चाल नन्द के छलबलिया,
जा दिन जनम्यौ कारागृह में, बा दिन पर्‌यो अकाल।
राधेरानी के प्रताप ते है गयौ मालामाल,
नन्द के छलबलिया।

ओर एक गीत राधा की विरह स्थिति का। कुछ ही पंक्तियों में राधा की व्याकुलता का अत्यंत सूक्ष्म चित्रण हुआ है। श्रीकृष्ण के वियोग में उन्मादिनी राधा अस्थि पंजर बन कर रह गई हैं-

राधा ऐ, स्याँम बिना कल कहाँ ते? सूखि-सूखि पंजर है गई राधे,
ललि गई ए पलका ते,
खन उतरै, खन चढ़े महल पै, मारै मूड़ अटा ते। बिना कल कहाँ ते?

★★★

सन्ध्या का अर्थ एवं व्याख्या

डॉ. सत्यदेव सिंह

संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड पण्डित श्री वामन शिवराम आप्टे द्वारा रचित संस्कृत–हिन्दी कोश के अनुसार सन्ध्या शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से बताई गई है:–

1. सन्धि+यत्+टाप् (प्रत्यय) लगाकर,

2. सम्+ध्यै+अङ्+टाप् (प्रत्यय) लगाकर,

जिसका अर्थ होता है मिलाप, जोड़, प्रात या सांयकाल का सन्धिवेला तथा प्रात:काल, मध्याह काल तथा सायकाल के समय की जाने वाली प्रार्थना।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने संस्कार विधि नामक पुस्तक के अन्तर्गत गृहस्थियों के लिए पाँच तरह के यज्ञों का विधान बताया है, ये पाँच यज्ञ हैं– 1. ब्रह्मयज्ञ (सन्ध्या), 2. देवयज्ञ (अग्निहोत्र या हवन), 3. पितृ यज्ञ

(माता-पिता की सेवा-सत्कार) 4. अतिथि यज्ञ (घर पर आये हुए साधु-सन्त, विद्वान या अपंगादि की सेवा) तथा 5. बलिवैश्व देव यज्ञ।

इन पंच-महायज्ञों में सबसे पहला स्थान ब्रह्मयज्ञ अर्थात् सन्ध्या का ही है। सन्ध्या का अर्थ होता है - अच्छे प्रकार से ईश्वर का ध्यान करना। वैसे तो त्रिकाल सन्ध्या की विधान विद्वानों द्वारा बताया जाता है, किन्तु प्रात:काल व सांयकाल की बेला में सन्ध्या कर्म अवश्य ही प्रत्येक गृहस्थ, सन्यासी वा ब्रह्मचारी को करनी चाहिए।

मनुस्मृति के अनुसार साधक को सन्ध्या करने से पूर्व जल आदि से शरीर की शुद्धि तथा वर राग-द्वेष आदि के त्याग से आभ्यन्तर शुद्धि कर लेनी चाहिए।

"अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति, मन: सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्याम् भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥"

(मनु. अ. 5/ श्लोक 108)

यदि हम अपनी प्रवृत्तियों पर विचार करें तो उनकी दो गतियों का पता चलता है अन्तरमुखी प्रवृत्ति और बहिर्मुखी प्रवृत्ति प्राय: हमारी बहिर्मुखी प्रवृत्ति रहा करती हैं। हम क्या खायें, क्या पीयें, किससे मिलें, कैसे धन कमायें आदि-आदि बाहर की बातों की ओर ही सोचा करते हैं। दिन रात में बहुत कम ऐसा होता है कि बाहरी बातों से हमको छुटकारा हो सके और हमारी प्रवृत्तियाँ अंतर्मुखी हो सकें। कुछ लोग तो कभी भी नहीं सोचते। हाँ, जब हम सो जाते हैं, और गहरी नींद आ जाती है तो हमारा कुछ देर के लिए बाहरी झंझटों से छुटकारा हो जाता है, परन्तु कभी-कभी हमको अपने विषय में भी सोचना चाहिए। जो सदा संसार के विषयों में ही लिप्त रहता है वह रथ के उस स्वामी के समान है जो रथ को सजाने में ही लगा रहता है और स्वयं भूका या नंगा रहता है।

हम अपनी प्रवृत्तियों के दो भाग कर सकते हैं एक तो केन्द्रोन्मुखी प्रवृत्तियां दूसरी केन्द्र प्रतिमुखी प्रवृत्तियां। यदि हमारी समस्त वृत्तियाँ केन्द्र की ओर ही रहे तो संसार का काम नहीं चल सकता। हम खाना कपड़ा आदि प्राप्त करने के लिए बाहर की चीजों से नाता जोड़ते हैं। परन्तु ऐसा नित्य करते करते हम अपने केन्द्र से दूर होते जाते हैं।

इसको रोकने के लिए दूसरी प्रवृत्ति केन्द्रोन्मुखी की आवश्यकता होती है याद रखना चाहिए कि किसी चक्र या वृत्त को बनाने के लिये दी चीजों की आवश्यकता होती है एक केन्द्र और दूसरा अर्द्धव्यास यदि केन्द्र हो और अर्द्धव्यास न हो तो वृत्त बन ही नहीं सकता और यदि केन्द्र न हो और अर्द्धव्यास हो तो भी वृत्त का बनाना असम्भव है। केन्द्र स्थान को नियत करता है और अर्द्धव्यास परिणाम को यदि केन्द्र नियत है तो जितना बड़ा अर्द्धव्यास होगा उतना ही बड़ा चक्र बनेगा और यदि केन्द्र नहीं है तो चाहे छोटा अर्द्धव्यास हो चाहे बड़ा स्थानाभाव के कारण वृत्त नहीं बन सकता। इसका मोटा उदाहरण खूंटे से ले सकते हैं बैल को खूंटे से बांध दो। बैल खूंटे के चारों ओर फिरेगा। परन्तु कितनी दूर तक ? जितनी बड़ी रस्सी है। रस्सी चक्र के परिमाण को नियत करेगी। खूंटा स्थान को यदि खूंटा न हो तो बैल रस्सी को लेकर भाग जायेगा। हमारी आत्मा केन्द्र है और हमारी भावनायें

अर्द्धव्यास हैं। केन्द्रोन्मुखी और केन्द्र प्रतिमुखी प्रवृत्तियों के समन्वय से ही लोक यात्रा चलती है। यदि इनके समन्वय में भेद पड़ जाय तो लोक यात्रा असम्भव है। यजुर्वेद में एक बहुत ही उपयोगी मन्त्र आया है।

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता स्थनाभाविवाराः।

(यजु. 34/5)

अर्थात् इस मन में ऋग्, यजु, सामवेद इस प्रकार लगे हैं, जैसे रथ के पहिये की नाभि में आगे लगे रहते हैं। पहिये में एक नाभि होती है और दूसरी परिधि नाभि और परिधि में सम्बन्ध स्थापित करके उसे दृढ़ करने का काम आरों का है। आरे नाभि को अपने स्थान पर रखते हैं। धर्म, धर्म-पुस्तक या ईश्वर भक्ति का सबसे मुख्य काम आरों का है और केन्द्र को परिधि की ओर परिधि को केन्द्र की ओर खींचे रखते हैं। इससे आत्मा संसार के कामों मे संलग्न होता हुआ भी अपने को नहीं भूलता। जिस प्रकार आरों के न होने से परिधि टूट जाती है और समस्त चक्र अस्त-व्यस्त हो जाता है इसी प्रकार धर्म का विचार न होने से मनुष्य संसार में इतना लिप्त हो जता है कि उसकी संसार-यात्रा भी सुखमय नहीं होती। संसार के सुख क्षणभंगुर होते हैं, उनमें उसी समय तक सुख है जब तक उनका सम्बन्ध हमारी आत्मा से हैं। जहाँ मर्यादा नष्ट हुई वहां सुख भी नष्ट हुआ और संसार भी बिगड़ गया।

संध्या करने का सबसे बड़ा फल यह है कि हम अपनी आत्मा और उसके भीतर व्यापक परमात्मा का चिन्तन करके अपने सांसारिक सम्बन्ध को मर्यादा में रखते हैं। दिन में दो बार सायं प्रातः यह सोचना कि हम आत्मा हैं, चेतन हैं, जड़ नहीं है, जड़ जगत से हमारा सम्बन्ध उतना ही है जितना हमारे लिये उपयोगी है यह कुछ कम नहीं है। हमारा मन उस कबूतर के समान है जिसके पैर में धागा बन्धा हुआ है। यह धागा उसे अपनी छतरी से नियत दूरी तक ही उड़ने देता है, ज्योंही वह सीमा पार हुई धागा उसको छतरी की ओर खींच लेता है "बस इससे आगे मत बढ़ो, बढ़ने में विपत्ति है।"

बुद्धिहीन बैल समझता है कि गले की रस्सी उसके लिये व्यर्थ बन्धन है। उसको खूंटे से बहुत दूर नहीं जाने देती। परन्तु उसको ज्ञात नहीं कि स्वामी ने यह रस्सी समझ बूझ कर बाँधी है। रस्सी तुड़ा कर खूंटे से भागना भयानक जंगल में भेड़ियों और व्याघ्र का शिकार होना है। सुख उसी समय तक है जब तक रस्सी से बँधे हुये मर्यादा के भीतर चर रहे हो। ईशोपनिषद् में कहा है-

"तेन त्यक्तेन भुजीथाः"

त्याग भाव से संसार को भोगा। संसार यात्रा के लिये संसार की वस्तुओं को भोगना तो है ही, परन्तु क्या भोगते ही चले जाओगे? कितना भोगोगे? यदि यात्रा का उल्लंघन किया तो याद रखो कि संसार की वस्तुओं से सुख, भाग जायेगा। संसार की हर एक वस्तु एक सीमा तक ही सुख देती है, उस सीमा को पार किया और दुःख आरम्भ हुआ। अंगूर को मुँह में रक्खो, मीठा लगेगा। उसको दो घन्टे मुँह में रक्खे रहो मतली आने लगेगी। क्यों? इसलिये कि सीमा से बाहर चले गये। अंगूर मजेदार था। उसका मजा कौन चुरा ले गया? अंगूर तो तुम्हारे मुँह में है? उत्तर मिलेगा कि तुम्हारा सीमोल्लंघन ही मजे को उड़ा कर ले गया। अंगूर वहीं है। आपकी उच्छृंखलता मजे की बाधक है। परमात्मा चिन्तन इसको संसार में मर्यादा के बाहर विचरने से रोकता है। वह हमारी वृत्तियों को

भीतर की ओर खींचता रहता हैं। यदि इस चिन्तन को सर्वथा त्याग दिया जाये तो हम बिना खूंटे के बैल हो जाते हैं। मन लगाकर और अर्थ समझकर संध्या करने वाले व्यक्ति को नित्य यह सोचने का अवसर मिलता है कि मैं क्या हूँ? परमात्मा क्या है? मेरा संसार से कितना सम्बन्ध है? मुझे संसार की वस्तुओं को भोगने की कहाँ तक आज्ञा है, और मेरा इसमें अपना कितना हित हैं?

एक और बात है। यह तो सब जानते हैं कि संसार की वस्तुओं में मजा है सुख है वे हमको अच्छी लगती हैं। परन्तु हम को यह ज्ञान नहीं कि वह मजा कितनी सीमा तक है। लोग इसलिये दु:ख नहीं उठाते कि वे चीजों को भोगते हैं। वे इसलिये दु:ख उठाते हैं कि वे सीमा से अधिक चीजों को भोगते हैं। शरीर धारण के लिये भोजन की आवश्यकता है परन्तु परिमित भोजन की।

इससे आगे क्या है? रोग और मृत्यु। वही दूध वही घी, वहीं मीठा जो शरीर को पुष्टि देते हैं- मात्रा से अधिक रोग के कारण हो जाते हैं। अत: इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि हमको जड़ वस्तुओं की उपयोगिता की सीमा का परिज्ञान होता रहे और हम यह न भूल जायें कि हर एक खाने पीने की चीजों के मजे में हमारा चेतन भाग कितना है? ईश्वर का चिन्तन हमको नित्य यह याद दिलाता रहता है कि हर वस्तु के मजे में इतना भाग आत्मतत्व का है।

एक और मोटा उदाहरण लीजिये। गेहूँ के दो दाने मुँह में डालिये और उनको चबाइये। पहले तो वे फीके से लगेंगे परन्तु चबाते-चबाते उनमें मिठास आ जायेगा। यह मिठास कहाँ से आया? यह केवल गेहूँ का मिठास नहीं है। जब आप चबाते हैं तो आपके मुख की ग्रन्थियों से एक प्रकार रस निकलता है। वह रस गेहूँ के दोनों के साथ मिलकर उनको मीठा कर देता है। यह बात अगर आपकी समझ में न आवे तो किसी डॉक्टर के पास चले जाइये वह इस रहस्य को समझा देगा। यह दृष्टान्त हमने इसलिये दिया है कि आप यह समझ जायें कि बाहरी वस्तु के सुखप्रद होने में आपका भीतरी भाग कितना है। यदि इस रस का निकलना बन्द हो जाये तो चीजों का मीठा लगना भी बन्द हो जाय।

यह दृष्टान्त ऊपरी है। एक भीतरी दृष्टान्त लीजिये। आपको जो चीज बहुत ही मजेदार लगती हो उसको खाने बैठिये परन्तु ऐसे समय जब आपको अनेक मार्मिक चिंताओं ने घेरा हुआ हो, आप क्या कहा करते हैं? अजी खाना मुंह में चलता ही न था, बहुत कुछ, खाने का यत्न किया, परन्तु खाया नहीं गया। मैं पूछता हूँ किसका दोष है? खाने का नहीं खाना तो भला चंगा है, दोष है आपकी भीतरी भावनाओं का जिन्होंने मीठे खाने में विष मिलाकर उसे कड़वा कर दिया। इसलिए डॉक्टर लोग कहते हैं कि खाने के समय मन को आनन्द में रखो, हंसी खुशी से खाओ, नाक-भौं चढ़ाकर मत खाओ। जैसे बाहरी वस्तु को मीठा बनाने के लिए मुख की ग्रन्थियों के रस की आवश्यकता है उसी प्रकार भीतरी वृत्तियों अर्थात् आनन्दयुक्त मन की भी जरूरत है। मन की शांन्ति में आत्मतत्व बड़ा बहुमूल्य अंग है। संध्या हमको इस तत्व की याद दिलाती है।

संध्या करने में हम ईश्वर की खुशामद नहीं करते। किसी ऐसे व्यक्ति के गुणों का चिन्तन करना जिससे हमको लाभ पहुँचता है खुशामद नहीं है। खुशामद वह होती है जिसमें किसी को खुश करके उससे अनुचित लाभ उठाने का यत्न किया जाय जिसके हम अधिकारी नहीं है।

जितनी वस्तुओं को हम भोगते हैं उनके गुणों का पहले चिन्तन करते हैं। प्यासा मनुष्य जल को चाहता हो तब है जब उसको उसकी शीलता का ध्यान आ जाता है। हम किसी मनुष्य के पास उसके गुणों से लाभ उठाने के लिए उसी समय जाते हैं जब हम उसके गुणों का पहले चिन्तन करते हैं। अत: गुणों का चिन्तन खुशामद नहीं है और यदि यह चिन्तन, स्पष्ट शब्दों द्वारा किया जाय तो चिन्तन में कोई बाधा नहीं पड़ती अपितु चिन्तन अधिक स्पष्ट हो जाता है क्योंकि शब्दों का उच्चारण स्पष्ट चिन्तन का सहायक होता है। जैसे बच्चा चिल्लाता है 'बर्फ वाले! बर्फ दे जाओ' यह खुशामद नहीं है। बर्फ के साथ बर्फ वाले के गुणों का चिन्तन बच्चे के मस्तिष्क में हो रहा है। शिष्य गुरु से प्रार्थना करता है गुरु जी व्याकरण पढ़ाइये इसका अर्थ यह है कि गुरु जी कहते ही गुरु जी के गुणों का चिन्तन हुआ। इसी चिन्तन से प्रेरित हो कर ही तो प्रार्थना की गई। कभी-कभी गुणों का चिन्तन मूक भी होता है। जैसे कोई अपने पिता के पास जाकर कहता है पिता जी, दो रुपये चाहिए। ऐसा प्रार्थी मन में जानता है कि पिता रुपये वाला भी है और उसका मुझे पर स्नेह भी है तथा वह कंजूस भी नहीं है। यदि पुत्र के ज्ञान में पिता के यह गुण विद्यमान न हो तो वह कदापि ऐसी प्रार्थना न करें, परन्तु यदि लाभ पहुँचाने वाला व्यक्ति अकृष्ट और अति सूक्ष्म हो और साधारणतया उधर को ध्यान न जाता हो तो प्रार्थी के लिए स्पष्ट शब्दों में प्रार्थना आवश्यक हो जाती है, क्योंकि जैसे-जैसे शब्द व्यक्त किये जाते हैं उन शब्दों के वाच्यगुणों का भी स्पष्टतया चिन्तन होने लगता है। माता के हाथ से प्राप्त की हुई रोटी को खाता हुआ पुत्र यदि यह चिन्तन भी करता है कि मेरी प्यारी माता मुझे खिला रही है तो उसका न केवल माता के प्रति प्रेम ही अधिक हो जाता है अपितु उस प्रेम के आनन्द का अधिक भाग पुत्र को भी मिलता है। प्रेम का आनन्द उभयपक्षीय है जो प्रेम करता उसे भी मजा आता है और जिससे प्रेम किया जाता है उसे भी मजा आता है। छोटे बच्चे प्राय: यह आग्रह किया करते हैं कि उनकी माता ही उनको रोटी खिलावे। वे दूसरे के हाथ से खाना पसन्द नहीं करते। यह है तो बच्चों की सी बात, पेट तो खाने से मरेगा खिलाने वाले के हाथ से नहीं, परन्तु इस साधारण-सी घटना के पीछे एक बहुत बड़ी दार्शनिक सच्चाई छिपी हुई है। बच्चा रोटी भी खाता है और माता के प्रेम का भी आस्वादन करता है। इसी प्रकार संसार के भोग्य पदार्थों के साथ-साथ यदि यह भावना भी रहे कि ये भोग्य पदार्थ किसी परम कारुणिक सन्त की ओर से आ रहे हैं तो उनसे प्राप्त होने वाले आनन्दों में विशदता आ जाती है। इसलिए जो लोग खुशामद खुशामद कह कर ईश्वर की भक्ति की अवहेलना करते हैं। वे अज्ञानवश अपने को एक परम आनन्द से वंचित रखते हैं।

आप बाजार से मिठाई मोल लेकर खाइये और अपने मित्र की भेजी हुई मिठाई खाइये। इन दोनों के आस्वादन में भेद होगा। पहली मिठाई में केवल स्थूल मिठास है। दूसरी में स्नेह का सूक्ष्म मिठास भी विद्यमान है। उपहार भेजने की जो प्रथा है उसके पीछे भी यह सत्यता निहित है। उपहार का प्रकट रूप से कोई अधिक मूल्य नहीं, परन्तु जब उस उपहार के साथ प्रेम या आदर या मान संयुक्त रहता है तो उसका मूल्य बढ़ जाता है। तभी तो कहावत है- "मान का पान भी बड़ा होता है।"

संध्या के मंत्रों का यही प्रयोजन है कि वे स्पष्ट रूप में उस सत्ता के गुणों का वर्णन करते हैं जो इसको संसार में सब कुछ दे रही हैं। उनके गुणों का चिन्तन उस सत्ता के लिए नहीं अपितु हमारे आन्तरिक विकास के लिए आवश्यक है।

कुछ लोगों का आक्षेप है कि संध्या या प्रार्थना नियत शब्दों में क्यों की जाय? क्या ईश्वर केवल संस्कृत भाषा ही समझता है? क्या वह हमारे हृदय की भाषा नहीं जानता? ऐसा आक्षेप करने वाले संध्या के महत्व को नहीं समझते। हम ऊपर कह चुके हैं कि ईश्वर के गुणों का चिन्तन आवश्यक है। हम व्यर्थ ही उससे कुछ मांगते नहीं और न यह कोई अच्छी बात है कि हम ईश्वर से जो चाहे मांगा करें। यहाँ प्रश्न यह नहीं है कि ईश्वर सुनता है या नहीं और संस्त समझता है या अरबी प्रश्न यह है कि हमको अपने मन में किन गुणों का चिन्तन करना है। एक मनुष्य कह सकता है है प्रभु! मैं आज डांका डालने जा रहा हूँ। मुझे सफलता प्रदान कीजिए परन्तु ऐसी प्रार्थना वही करेगा जिसको यह विश्वास होगा कि ईश्वर डाकुओं की भी सहायता किया करता है। ऐसे गुणों का चिन्तन उसके आत्मिक विकास के लिए कितना लाभ या हानि पहुँचायेगा इस पर पाठकगण स्वयं विचार कर सकते हैं। मस्तिष्क का विकास तो विचारों से होगा। हमको प्रार्थना में केवल यहीं नहीं करना है कि जो विचार हमारे मन में हों, उनको व्यक्त कर दें। इसके अतिरिक्त सबसे बड़ा और आवश्यक कार्य यह है कि हमारे मन में वे तरंगे भी उत्पन्न हो जाँय जो साधारणतया उत्पन्न नहीं हो रहीं। हम अपने मस्तिष्क के तल को इतना ऊँचा करना चाहते हैं। अत: इसके लिए विकास के आरम्भ काल में नियत शब्द चाहिए। भक्त की वह अवस्था भी आ सकती है जब उसका मन इतना उच्च हो जाय कि बाह्य शब्दों की आवश्यकता न पड़े, परन्तु यह तो बड़े उन्नत मस्तिष्कों की बात है।

प्रत्येक पुरुष ऐसा नहीं होता और जब तक वह ऐसा न हो उसको संध्या के नियत शब्द अपने समक्ष रखने चाहिए। शब्द भावों के रक्षक होते हैं। बिना शब्दों के भाव लुप्त हो जाने का भय रहता है। अत: शब्दों की अवहेलना वा उपेक्षा नहीं की जा सकती। यह ठीक है कि शब्द सब कुछ नहीं है। केवल रटना लाभकर नहीं परन्तु यह भी कहना अनुचित होगा कि शब्द कुछ भी नहीं है। वेद मंत्रों में जो शब्द आये है वे अर्थ सहित समझने से आदर्श हमारे हृदय पटल से ओझल नहीं होने पाता। बिना मंत्रों के भी हम अपने भाव या अपनी इच्छायें ईश्वर के प्रति प्रकट कर सकते हैं। परन्तु केवल इतना ही करना भिकारीपन होगा। प्रत्येक पुरुष की इच्छायें उसकी प्रवृत्तियों और योग्यता के अनुसार होती है। एक शराबी ईश्वर से शराब की याचना कर सकता है। एक कामी ईश्वर से कामसाधना के लिये प्रार्थी हो सकता है परन्तु हमारी इच्छाएं पूरी होती रहें यही तो जीवन का उद्देश्य नहीं होना चाहिए। संध्या का यह प्रयोजन नहीं कि हमारी इच्छाओं की पूर्ति हो जाय। संध्या का प्रयोजन तो यह है कि बुरी इच्छायें आने न पायें और यदि उठें भी तो वे मुरझा जावें। आत्मोन्नति के लिये साधक द्वारा ईश्वर की प्रार्थना की जानी चाहिए। हृदय रूपी उद्यान में फल फूल भी उगते हैं, झाड़ झंकार व घास फँस भी। सभी की उन्नति के लिए तो प्रार्थना नहीं की जानी चाहिए। घास को उखाड़ना भी जरूरी है। जिससे फल फूल को बढ़ने का अवसर प्राप्त हो सके।

परमात्मा (ईश्वर) के बारे में वेद की आज्ञा है कि वह हमारा बन्धु है जनिता (पिता) है। वह हमारे सब कार्यों को पूर्ण करने वाला है। वह परमात्मा सम्पूर्ण लोकों के नाम, स्थान व जन्मों को जानता है और वह सांसारिक सुख दु:ख से रहित, नित्यानन्द युक्त मोक्षस्वरूप धारण करने हारे परमात्मा में मोक्ष को प्राप्त होकर विद्वान लोग स्वेच्छापूर्वक विचरण करते हैं। वहीं परमात्मा सच्चे साधक का उपासक का परमगुरु आचार्य, राजा

और न्यायाधीश है। अत: अपने लोग मिलकर सदा उस परमपिता परमात्मा (ईश्वर) की स्तुति प्रार्थना श्रद्धापूर्वक किया करें। वेद-मन्त्र इस प्रकार है:

"स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त॥"

(यजु. 32/10)

पद्यार्थ:-

वही हमारा बन्धु सखा है वही विधाता जनिता माता।
जन रहा सब धाम भुवन वह, करता लेखा-जोखा खाता।
उसी एक परमेश्वर की हम, नित्य स्तुति करें प्रार्थना।
तृतीय धाम पहुँचाने वाला, वही मोक्ष-सुख भरे दामना।
प्रेमभाव से मिलजुलकर हम, निर्मल मन हो ध्यान धरें।
अमृत आनन्द पाने हेतु, नित उसका हम स्तुति गान करें।

★★★

मथुरा डॉक पंजीयन संख्या-070/2022-24 पंजीयन संख्या UPHIN 2003/11917

उत्तर प्रदेश ब्रज तीर्थ विकास परिषद

upbtvp

सांस्कृतिक धरोहर की पुनर्प्रतिष्ठा

UP Braj Teerth Vikas Parishad has been constituted under the Uttar Pradesh Braj Niyojan Aur Vikas Board (sanshodhan) Adhiniyam 2017 (U.P. Act No. 3 of 2017) for the preparation of a plan for preserving, developing and maintaining the aesthetic quality of Braj heritage in all hues - cultural, ecological and architectural, co-coordinating and monitoring the implementation of such plan and for evolving harmonized policies for integrated tourism development and Heritage conservation and management in the region, giving advice and guidance to any department/local body/authority in the district of Mathura in respect of any plan, project or development proposals which affects or is likely to affect the heritage resource of the Braj Region and for matters connected here with or incidental there to.